THE HINDU

Date:25-11-22

Disquiet in the Northeast

Boundary disputes between States should be resolved quickly

Editorial

On November 22, five villagers from Meghalaya and an Assam forest guard were killed and two others were seriously injured in a firing incident along the boundary between the two States. The Assam government said the incident happened after its forest guards tried to intercept a truck smuggling illegal timber. When the truck was stopped, the forest personnel were gheraoed by unknown miscreants who resorted to violence, according to Assam, which maintains that the staff resorted to firing to save their lives. Meghalaya Chief Minister Conrad Sangma said on Twitter that the Assam police and Assam forest guards entered Meghalaya and "resorted to unprovoked firing". Versions differ and both States have instituted separate inquiries, but the mistrust and underlying conflicts in the northeast that lead to such incidents are deeper. Assam and Meghalaya have a five-decade old boundary dispute. Meghalaya, carved out of Assam as an autonomous region in 1970, became a full-fledged State in 1972. In March, Assam and Meghalaya resolved the boundary dispute at six out of total 12 such locations along their 884.9 km boundary, and the next round of talks was to take place soon. Though the latest flare-up did not arise out of this dispute, it happened along a disputed border stretch.

Assam has boundary disputes at various points in time with the States carved out of it — Arunachal Pradesh, Nagaland, Meghalaya and Mizoram. Last year, the police forces of Assam and Mizoram clashed, killing five on the Assam side. Dozens of people have died in conflicts along State borders in the northeast over the years. Union Home Minister Amit Shah had asked Assam to take the lead in resolving the lingering disputes, which have their origins in the colonial cartography that overlooked the life patterns of local communities. Traditional hunting, grazing and farming grounds of communities got divided by modern administrative boundaries at many places. When new States were formed, such concerns acquired a more serious nature, and the Naga demand for a unified homeland that is now spread beyond the State of Nagaland is instructive. It is unfortunate and tragic that States that are part of the Indian Union are involved in violent clashes with one another. The BJP is in government in much of the northeast and has the leverage to aim for a comprehensive resolution of all outstanding disputes in the region. Communities will have to be taken into confidence, and boundaries adjusted. In any case, these man-made lines should not be allowed to restrict the movement of people in pursuit of a livelihood.

दैनिक भास्कर

Date:25-11-22

देश के सम्पन्न राज्य कम मजदूरी क्यों देते हैं?

संपादकीय

ताजा आंकड़ों के अनुसार हरियाणा प्रति व्यक्ति आय के मामले में इस वर्ष सबसे आगे है। इस पैमाने पर केरल उससे 20% कम है, फिर भी आरबीआई रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा में मजदूरों को केरल के मुकाबले आधी मजदूरी दी जाती है। यह विरोधाभासी स्थिति इस बात की तस्दीक है कि समान श्रम के लिए समान मजदूरी के सिद्धांत पर पूरी तरह अमल नहीं होता है। अगर केरल जैसा राज्य कम आय और कम जीडीपी के बावजूद अपने मजदूरों को शोषण से बचा सकता है तो देश के अन्य राज्यों के कानून क्यों नहीं? यह स्थिति तब है, जब केरल कोरोना से खासा प्रभावि हुआ था। आरबीआई की रिपोर्ट का दूसरा चौंकाने वाला तथ्य था- एमपी और राजस्थान में मिलकर जितना निर्माण कार्य होता है, उतना अकेले तमिलनाडु करता है। इन तीनों राज्यों की आबादी समान (लगभग 7-8 करोड़) है। उद्योग लगाने में टॉप के दस राज्यों में आठ उत्तर भारत के हैं और यूपी, एमपी, झारखंड क्रमशः दूसरे, चौथे और पांचवें स्थान पर। उत्तर भारत के राज्य भी अब समझ गए हैं कि उद्योग विकास की पहली शर्त है। उद्योग लगेंगे तो रोजगार और श्रमिकों को बेहतर पारिश्रमिक मिलेगा। वे परिवार की शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य पर खर्च करेंगे, जिससे एमएसएमई सेक्टर चलेंगे। अर्थ-चक्र घूमेगा। अगर झारखंड में उद्योग लगाने की सहूलियत मिल रही है तो पड़ोस के राज्य भी ऐसा ही चाहेंगे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:25-11-22

निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति

संपादकीय

निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया के मामले की सुनवाई कर रहे सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों वाले संवैधानिक पीठ ने अपनी कटु टिप्पणी और उस सुझाव के लिए सुर्खियां बटोरीं जिसमें उसने कहा कि देश के मुख्य न्यायाधीश को भी मुख्य निर्वाचन आयुक्त की चयन प्रक्रिया के लिए बने पैनल में शामिल होना चाहिए।

यह सुझाव नया नहीं है। बीते एक दशक के दौरान कई राजनेताओं और पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्तों ने भी ऐसी ही मांग की है कि एक द्विदलीय कॉलेजियम की व्यवस्था हो जिसमें कानून मंत्री, देश के मुख्य न्यायाधीश, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा लोक सभा और राज्य सभा के नेता शामिल हों। इससे संकेत मिलता है कि राजनीतिक व्यवस्था में मौजूदा प्रक्रिया को लेकर एक किस्म की बेचैनी है। वर्तमान प्रक्रिया में प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति करते हैं। निर्वाचन आयोग अभी हाल तक देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराता आया है और नियुक्तियों को लेकर कोई मुद्दा नहीं बनता था। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाओं का अंबार इस आशंका के कारण लगा कि हाल के वर्षों में निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता के साथ लगातार समझौता हुआ है। खासतौर पर कोविड-19 महामारी के दौरान ऐसा हुआ जब प्रधानमंत्री के चुनाव प्रचार के समापन के बाद प्रचार पर रोक लगा दी गई।

परंतु सर्वोच्च न्यायालय का सुझाव न्यायिक दखलंदाजी के अलावा कई अन्य वजहों से दिक्कतदेह है। उदाहरण के लिए देश के मुख्य न्यायाधीश की मौजूदगी संस्थागत स्वायत्तता की गारंटी नहीं है। वह केंद्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक की नियुक्ति करने वाली समिति में भी शामिल हैं लेकिन वह संस्थान कार्यपालिका के आदेश पालन के लिए इतना बदनाम है कि एक बार सर्वोच्च न्यायालय ने उसकी तुलना 'पिंजरे में बंद तोते' से की थी। निश्चित तौर मुख्य न्यायाधीशों ने भी सेवानिवृत्ति के बाद राजनीतिक नियुक्तियां स्वीकार की हैं ऐसे में उस संस्थान को भी राजनीतिक दबाव से मुक्त नहीं माना जा सकता है। दूसरी बात यह कि कई मुख्य निर्वाचन आयुक्तों का कार्यकाल काफी छोटा रहा है और इसे इस आलोक में देखा जाना चाहिए कि हाल के दिनों में कई मुख्य न्यायाधीशों का कार्यकाल भी बहुत कम अवधि का रहा है। सन 1990-96 के बीच देश के निर्वाचन आयुक्त रहे और खूब सुर्खियां बटोरने वाले टी एन शेषन का हवाला देते हुए कहा जाता है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त वैसा होना चाहिए लेकिन यहां एक बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है कि निर्वाचन आयोग की संस्थागत मजबूती व्यक्ति विशेष से अधिक होनी चाहिए।

अब तक सर्वोच्च न्यायालय ने शायद इस बात की अनदेखी कर दी है कि प्रमुख समस्या इस बात से उत्पन्न होती है कि संविधान के अनुच्छेद 324 में चुनावों की निगरानी, निर्देश और नियंत्रण का काम निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है। उसमें यह नहीं बताया गया है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त या सदस्यों की नियुक्ति किस प्रकार की जाएगी? इसकी दूसरी धारा में कहा गया है कि निर्वाचन आयुक्त एवं मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्तियां राष्ट्रपति करेंगे और वह संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून के अनुसार होगा। लेकिन अब तक कोई कानून नहीं बनाया गया। संसद के सामने यह एक अवसर है कि वह अपने दायित्व का निर्वहन करे और कानून बनाने की प्रक्रिया शुरू करे। एक आशंका यह भी है कि वर्तमान संसद बहुमत से ऐसी किसी कवायद को पारित कर देगी जो कार्यपालिका को और अधिक अधिकार सौंपती हो। इस आशंका को दूर किया जा सकता है अगर वर्तमान सत्ताधारी दल उचित संयम का इस्तेमाल करते हुए विधान बनाने के लिए बहुदलीय कवायद करे और सक्रिय स्वायत्तता सुनिश्चित करे। मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा निर्वाचन आयुक्तों को सेवा अवधि के बाद राजनीतिक नियुक्तियों से रोकने की अनुशंसा की जा सकती है। परंतु कुल मिलाकर नियुक्ति प्रक्रिया में संसद की प्रधानता का सिद्धांत अभी भी निरपवाद है।

जनसत्ता

Date:25-11-22

राज्य बनाम राज्य

संपादकीय

पूर्वोत्तर भारत में यह दूसरी बार है, जब दो राज्यों की पुलिस और सुरक्षाकर्मियों ने एक-दूसरे पर गोलीबारी की और उसमें छह लोगों की जान चली गई। दोनों में असम पुलिस शामिल थी। ताजा घटना असम और मेघालय की सीमा पर कार्बी आंगलोंग जिले में हुई। लकड़ी ले जा रहे एक ट्रक को सुरक्षाकर्मियों ने रोका, जिसे लेकर हिंसा भड़क गई थी। हालांकि दोनों राज्यों ने इस मामले को संभाल लिया है, मगर मेघालय के लोगों में रोष अभी बना हुआ है। असम के मुख्यमंत्री ने माना है कि असम पुलिस को इस मामले में अविवेकपूर्ण तरीके से कार्रवाई नहीं करनी चाहिए थी। मृतकों के परिजनों को पांच-पांच लाख रुपए मुआवजे की घोषणा कर दी गई है। ऐसी ही घटना पिछले साल जुलाई में मिजोरम और असम की सीमा पर हुई थी, जब दोनों राज्यों की पुलिस ने एक-दूसरे पर गोली चलाई और कई लोग मारे गए थे। बाद में असम सरकार ने अपने नागरिकों के लिए सलाह जारी की थी कि वे पड़ोसी राज्यों में न जाएं। एक गणराज्य में यह अपने तरह की पहली घटना थी, जब एक राज्य की पुलिस ने दूसरे राज्य की पुलिस पर ही गोलीबारी की और किसी राज्य ने अपने नागरिकों को दूसरे राज्य में न जाने की सलाह जारी की।

असम के साथ मणिपुर, मिजोरम और मेघालय का सीमा विवाद पुराना है। केंद्र सरकार इन विवादों को सुलझाने का प्रयास कर रही है और उसका दावा है कि काफी हद तक विवाद सुलझा भी लिए गए हैं। इस संबंध में करीब सात महीने पहले असम और मेघालय के बीच भी समझौता हुआ था, जिसमें कुल बारह में से छह विवादों को सुलझा लिए जाने का दावा किया गया। उसके बावजूद अगर यह घटना घटी, तो इसे क्या कह सकते हैं। इसी तरह मिजोरम को लेकर हुआ था, दोनों राज्यों के बीच तीन दिन पहले ही केंद्रीय गृहमंत्री ने सीमा विवाद को लेकर समझौता कराया था, मगर दोनों राज्यों की पुलिस आपस में भिड़ गई। असम, मिजोरम और मेघालय में एक ही पार्टी की या गठबंधन सरकारें है। इसलिए उनके बीच किसी तरह का राजनीतिक द्वेष भी नहीं कहा जा सकता। पूर्वोत्तर में चूंकि असम सबसे बड़ा राज्य है, इसलिए उससे सीमा विवाद को लेकर अधिक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाने की अपेक्षा की जाती है। मगर हैरानी की बात है कि वहीं की पुलिस अपनी कार्रवाइयों में संयम नहीं बरत पा रही।

यह ठीक है कि असम की सीमा से लगे पूर्वोत्तर के राज्यों के साथ उसका सीमा विवाद पचास साल से अधिक पुराना है और जातीय अस्मिता को लेकर उनमें अक्सर तनाव उभर आता है, मगर इसका यह अर्थ नहीं कि उसे बंदूक के बल पर शांत करने का प्रयास किया जाए। वहां सारा विवाद इसलिए है कि पूर्वोत्तर राज्यों के बीच अभी तक सीमा का सही ढंग से निर्धारण नहीं हो पाया है। पहाड़ी और जंगली राज्य होने की वजह से वहां इसीलिए अपनी जमीन की हकदारी को लेकर भ्रम पैदा हो जाता है। जब तक सीमा रेखा का निर्धारण नहीं हो जाता, यह समस्या बनी रहेगी। फिर, जब वहां की राज्य सरकारों को मालूम है कि विवाद की वजहें क्या हैं, तो सीमा पर सुरक्षा व्यवस्था का कोई दूसरा उपाय क्यों नहीं करतीं। मसलन, मिजोरम की घटना के बाद सीमाई इलाकों में केंद्रीय सुरक्षा बलों की तैनाती पर सहमति बनी थी। केंद्रीय गृह मंत्रालय को इसमें व्यावहारिक दखल देना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:25-11-22

कब तक शोषण

संपादकीय

महिलाओं के शोषण पर लगाम लगाना और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना आज हर तरह से आवश्यक है। श्रद्धा वॉकर हत्याकांड की गूंज पूरे देश में जारी है और यह दुखद मामला बता देता है कि महिलाओं की सुरक्षा के प्रति हमारी व्यवस्था सोलह आना सजग नहीं है। श्रद्धा ने महाराष्ट्र में 2020 में अपने कथित प्रेमी के खिलाफ लिखित शिकायत की थी। पुलिस से की गई शिकायत की कॉपी बुधवार को सामने आई है और इससे पता चलता है कि मुंबई पुलिस अगर चाहती, तो श्रद्धा की जान बच सकती थी। दिल्ली महिला आयोग की प्रमुख स्वाति मालीवाल ने उस समय हुई जांच पर सवाल उठाकर बिल्कुल सही किया है। वास्तव में, मुंबई पुलिस ने तब कोई कार्रवाई नहीं की थी, अतः मालीवाल का यह कहना सही है, 'जब तक देश का सिस्टम इतना खोखला रहेगा, लड़कियां ऐसे ही मरती रहेंगी।' इसी सप्ताह संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख एंटोनियो गुटेरस ने बताया है कि दुनिया में हर 11 मिनट पर एक महिला अपने परिचितों या परिजनों के हाथों मारी जाती है। शोषण और हिंसा का तांडव झेल रही महिलाओं की समग्र स्थिति का अनुमान भी भयावह है।

आज 25 नवंबर को दुनिया महिलाओं के खिलाफ हिंसा उन्मूलन अंतरराष्ट्रीय दिवस मना रही है, तब हमारे दिमाग में स्त्रियों के शोषण के खिलाफ ख्याल आने चाहिए। निस्संदेह, लोग पहले की तुलना में सजग हुए हैं, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है । कतर में आयोजित फुटबॉल विश्व कप में ईरान के खिलाड़ियों ने अपने देश में महिलाओं के दमन का जिस तरह विरोध किया है, वह बहुत कारगर है। महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचार को रोकना बहुत जरूरी है, उन पर अलग से कानून या कायदा थोपा नहीं जाना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान के किसी क्षेत्र में महिलाएं अब पीछे नहीं हैं, वे हर मोर्चे पर मुस्तैदी से लोहा ले रही हैं। यदि हम उनके साथ न्याय के पक्ष में खड़े नहीं होंगे, तो दरअसल अपने हिस्से की ममता घटा देंगे, मां, बहन, बेटियों को कमजोर कर देंगे। घरों में कैद कमजोर महिलाएं जो परिवार, समाज रचेंगी, वह भी कमजोर ही होगा। संयुक्त राष्ट्र महासचिव को केवल आंकड़े नहीं गिनाने चाहिए. दुनिया की तमाम सरकारों से महिलाओं का हाल पूछना चाहिए। बचाव के लिए उपाय अवश्य होने चाहिए।

सब जानते हैं, समाज श्रद्धाओं' से भरा हुआ है और 'आफताब' भी इफरात हैं। 'आफताबों' को कानून-व्यवस्था के जरिये ठीक किया जाएगा, लेकिन 'श्रद्धाओं' को भी अलग ढंग से सोचना होगा। भरोसा, भय या अति आत्मविश्वास को समझना होगा। लगभग दो साल पहले श्रद्धा ने मुंबई पुलिस को लिखित में बताया था कि

'पूनावाला मुझे गाली देता है और मारता है । मेरा गला दबाने की कोशिश की। वह मुझे डराता और ब्लैकमेल करता है कि मुझे मार डालेगा, टुकड़े-टुकड़े कर देगा और फेंक देगा। छह महीने हो गए हैं, वह मुझे मार रहा है, लेकिन मुझमें हिम्मत नहीं थी ।' वास्तव में, शिकायत करने की हिम्मत श्रद्धा ने जुटा ली थी, फिर अपनी ही शिकायत से उसने समझौता भी कर लिया। भारतीय समाज में महिलाओं के खिलाफ हिंसा के लिए न जाने कितने लोग जिम्मेदार हैं, लेकिन स्वयं शोषित होने वाले की जिम्मेदारी सबसे ज्यादा है। समय रहते जागना, जगे रहना और दूसरों को जगाने का सिलसिला बन जाना चाहिए। 'थोड़ी हिंसा तो चलती है', इस सोच से निकलना होगा। जो परिजन ऐसी हिंसा को छिपाते हैं, वे अपराधी से कम नहीं हैं, 'श्रद्धाओं' के शोषण या मौत में उनका भी हाथ है।

Date:25-11-22

जीएम सरसों पर इतनी जल्दबाजी क्यों

देविंदर शर्मा, (कृषि विशेषज्ञ)

केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय के अधीन काम करने वाली आनुवांशिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति (जीईएसी) ने जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) सरसों की एक किस्म धारा मस्टर्ड हाइब्रिड (डीएमएच) - 11 को पर्यावरणीय मंजूरी दी है। दावा किया गया है कि इससे सरसों की पैदावार बढ़ेगी और खाद्यान्न तेल का आयात कम होगा। तर्क है कि इसमें प्रति हेक्टेयर करीब 2,600 किलो सरसों का उत्पादन होगा, यानी करीब 30 फीसदी अधिक। मगर दिलचस्प है कि जिस किस्म को मंजूर किया गया है, वह 'जंक वैरायेटी' है, यानी विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती । फिर, इसकी तुलना वरुणा नामक भारतीय किस्म से की गई है, जिसकी पैदावार पहले ही कम है। इसके बनिस्बत डीएमएच-4 से इसकी तुलना की जाती, जिसमें प्रति हेक्टेयर 3,050 किलो उपज प्राप्त होती है, तो डीएमएच-11 स्वाभाविक तौर पर गैर- जरूरी किस्म जान पड़ती है। ऐसे में, भला यह कैसे कहा जा सकता है कि कम पैदावार वाली किस्म से देश में सरसों का उत्पादन बढ़ा लिया जाएगा ?

क्या यह 'न्यू साइंस' है, यानी ऐसी तकनीक या किस्मों को मंजूर करना, जो औद्योगिक घरानों के लिए मुफीद है? दिलचस्प है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर) में इसकी पैदावार को लेकर परीक्षण नहीं हुए हैं, तो फिर इसको किस आधार पर मंजूर किया गया है ? आखिर इस जल्दबाजी की जरूरत क्यों थी ? नई किस्म को मंजूर करने के लिए अपने यहां एक खास तरीका अपनाने का चलन रहा है। उसी किस्म को मंजूर किया जाता है, जो मौजूदा किस्म से कम से कम 10 फीसदी अधिक पैदावार करे। मगर डीएमएच-11 की पैदावार की अब तक आईसीएआर ने पुष्टि ही नहीं की है।

यहां मुझे 2001 की वह बैठक याद आ रही है, जो देश में पहली बार जीएम फसल को अनुमति देने के लिए बुलाई गई थी। उसमें मैं भी मौजूद था। बैठक में बीटी कपास को मंजूर करना था । इसका उत्पादन करने वाली कंपनी मॉनसेंटो-माइको का दावा था कि उसके दो वर्ष के शोध का नतीजा काफी अच्छा रहा है और दो महीने देरी से की गई बुआई के

बावजूद कपास की पैदावार में 50 फीसदी तक की वृद्धि देखने को मिली है। मैं उसके तर्क से सहमत नहीं था। जो फसल पांच महीने की हो, उसमें दो महीने देरी से बुआई के बावजूद अधिक उत्पादन कैसे संभव था ? और अगर यह संभव है, तो किसानों को दो महीने देरी से कपास की बुआई करने के निर्देश दे देने चाहिए थे ? विज्ञान कहता है कि किसी भी फसल की बुआई का समय काफी अहम होता है, इसलिए बीटी कपास बीज बनाने वाली कंपनी ने निस्संदेह बढ़-चढ़कर दावे किए थे। क्या इस बार भी वही कहानी दोहराई गई है? उस वक्त दबाव के बाद तो एक साल के लिए बीटी कपास की मंजूरी टाल दी गई थी, लेकिन इस बार हम ऐसा नहीं देख सके।

कुछ इसी तरह के दावों के साथ 2003-04 में देश में बोवाइन ग्रोथ हॉर्मोन टीके पर अनुमति लेने का प्रयास किया गया था । तर्क दिया गया था कि इससे दूध का उत्पादन बढ़ता है। जब इसके विरोध में कनाडा से आई रिसर्च का हवाला दिया गया, जिसमें कहा गया था कि ऐसे दूध मानव शरीर में जाकर 'प्रॉस्टेट कैंसर की वजह बनते हैं, तो इस फाइल को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। आज बिना ऐसे टीके के भारत दूध उत्पादन में शीर्ष पर है और यहां सालाना 21 करोड़ टन दूध का उत्पादन होता है।

साफ है, जीन में हेरफेर करके तैयार उत्पाद हमारे हित में नहीं हैं। झूठे दावों और तर्कों के आधार पर इनकी मंजूरी के प्रयास हो रहे हैं। हम चाहें, तो बिना जीएम किस्मों से सरसों की पैदावार बढ़ा सकते हैं। सन 1985 में एक बार तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा था, पेट्रोल, खाद और खाद्यान्न तेल के आयात से देश पर काफी ज्यादा बोझ है। वह मानते थे कि शुरुआती दो उत्पादों का आयात नहीं रोका जा सकता, लेकिन खाद्यान्न तेल के लिए सरसों के दाने देश में ही उगाए जा सकते हैं। उन्होंने 'तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन' का गठन किया, जिसका मकसद तिलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करना था । उस वक्त हम सालाना 1.1 करोड़ टन तिलहन का उत्पादन करते थे, लेकिन इस मिशन की शुरुआत के अगले 10 वर्षों में हमारा उत्पादन दोगुना हो गया और जरूरत का 97 फीसदी सरसों हम अपने यहां उगाने लगे। हालांकि, बाद के वर्षों में हमने आयात शुल्क कम करना शुरू कर दिया, जो अब शून्य है। नतीजतन, अब हम 1.3 करोड़ टन खाद्यान्न तेल आयात करने लगे हैं और खाद्यान्न तेल आयातक देशों में दूसरे स्थान पर आ गए हैं। देखा जाए, तो उस पीली क्रांति को हमने खुद विफल कर दिया। आज तेल आयात पर हम हर साल 1.15 लाख करोड़ रुपये खर्च कर रहे हैं। क्या इतना समर्थन बाहर के किसानों को देने के बजाय हम अपने अन्नदाताओं को नहीं दे सकते ?

कुछ इसी तरह के कुत्सित प्रयास उन पैकेटबंद खाद्य पदार्थों को लेकर भी हो रहे हैं, जो जीएम उत्पादों से तैयार होते हैं। भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) ने नियमों का एक मसौदा तैयार किया है, जो इन खाद्य पदार्थों से जुड़ा है। माना जा रहा है कि अमेरिका के पैकेटबंद खाद्य पदार्थों के निर्यात की राह आसान बनाने के लिए यह पहल हो रही है। हमें इससे बचना चाहिए।

साफ है, सबके विकास के लिए सबका साथ चाहिए। हम चाहें, तो अपने देश में ही समाधान ढूंढ़ सकते हैं। जैसे, सरसों उत्पादन में मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे राज्य सिरमौर माने जाते हैं। मध्य प्रदेश में खेती का एक तरीका है- सिस्टम ऑफ मस्टर्ड इंटेन्सिफिकेशन। इसमें कम पानी का इस्तेमाल करके पारंपरिक बीजों से ही अच्छी उपज पाई जाती है। इसी कारण इस तकनीक से सरसों की 4,600 किलो प्रति हेक्टेयर तक की पैदावार प्राप्त की जा रही है। राजस्थान में भी इसी तकनीक से हम 3,200-3,600 किलो प्रति हेक्टेयर सरसों उगा लेते हैं। क्या ऐसे प्रयास सरसों उगाने वाले अन्य

राज्यों में नहीं हो सकते ? आज भला उस किस्म पर दांव क्यों लगाना, जिससे महज 2,600 किलो प्रति हेक्टेयर की उपज हो ? अगर हम 'दूसरी पीली क्रांति' चाहते हैं, तो हमें खेती के तरीके बदलने चाहिए न कि पारंपरिक बीजों के जीन